विफल होती भारतीय संसदीय व्यवस्था

राजनीतिक जीवन को उसके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भ से कभी भी अलग नहीं किया जा सकता है। ब्रिटिश लोगों के सार्वजनिक जीवन में, एक समय होता है, जिसे 'सिली सीजन' कहा जाता है। हमारे देश में यह तब मनता है, जब संसद में अवकाश काल चलता है, और अनेक पत्रकारों को अपने पृष्ठों को भरने के लिए चिंतित होना पड़ता है।

वेस्टमिंस्टर के राजनीतिक काल को वर्ष के कुछ दिवसों के अलावा महत्वपूर्ण कहा जाता है। यहां के सांसद 160 कार्यदिवसों में से 150 पर तो उपस्थित रहते ही हैं। इनमें से कुछ कार्य दिवस तो मध्यरात्रि तक चलते रहते हैं। सांसदों का राजनीतिक करियर, संसद में उनके प्रदर्शन पर निर्भर करता है।

भारत से इसकी तुलना करें, तो हाल में संसद की बैठकें लगातार कम होती जा रही हैं। पूरे वर्ष में औसतन 60 बैठकें होती थीं, जो 2020 में घटकर 33 रह गई हैं। इसके लिए अभी महामारी का बहाना किया जा सकता है। परंतु अगर स्थितियां ऐसी ही रहीं, तो यह एक नया ट्रेंड बन सकता है। राज्यों की विधानसभाएं भी इसी राह पर चल रही हैं। वहाँ तो कानून बनाने की मात्रा भी तेजी से घट गई है। संसद में भी, विधेयकों को कुछ सेकंड में पारित कर दिया जाता है, क्योंकि संसद में जिस प्रकार की अव्यवस्था और शोर मचा रहता है, उसमें किसी मुद्दे पर बहस करना असंभव सा हो जाता है। हैरानी की बात यह है कि संसद की इस अफरा-तफरी पर किसी तरह की सार्वजनिक प्रतिक्रिया भी नहीं मिलती है। ऐसा लगता है कि संसद से लोगों ने कुछ अपेक्षा रखना ही बंद कर दिया है।

संसद की निरर्थकता के मुद्दे को यूं ही खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसके कई कारण हैं। इनमें एक तो यह कि इससे लोगों में सांसदों की भूमिका के प्रति भ्रम बढ़ता जा रहा है। एक सांसद की तुलना पार्षद या जिला परिषद सदस्य और विधायक से करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। जीएसटी परिषद् को वित्तीय शक्तियों के अधिक हस्तांतरण एवं नए

कानूनों के तकनीक संपन्न होने के साथ, संसद की पूर्व में होने वाली जिम्मेदारियां खत्म हो गई हैं। सांसद, वास्तव में या तो लोगों और केंद्र के बीच सेतु बन गए हैं या राज्य के विशेषाधिकार वाले राजनीतिक दल के एक अन्य पदाधिकारी रह गए हैं।

संसदीय चुनावों की प्रकृति में बड़ा परिवर्तन आ गया है। मत, अब स्थानीय प्रतिनिधि के बजाय प्रधानमंत्री के नाम पर दिए जा रहे हैं। मतदाताओं का ध्यान सरकारी योजनाओं के प्रभावी वितरण पर अधिक है। इसलिए वे कार्यपालिका और नौकरशाही तक केंद्रित हो गए हैं। आज के सांसद एक ऐसी भूमिका की तलाश में हैं, जो सरकार के बहुमत की स्थापना और कार्यपालिका द्वारा तैयार किए गए कानून का समर्थन करने से परे हो। कुल मिलाकर, भारतीय लोकतंत्र फल-फूल रहा है, लेकिन संसदीय व्यवस्था गहरे संकट में दिखाई दे रही है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित स्वप्न दासगुप्ता के लेख पर आधारित। 8 अगस्त, 2021